*मानसून और भारतीय कृषि - जुड़े हुए हैं या अलग-अलग ?**

भारतीय कृषि की मानसून के प्रति संवेदनशीलता बनी हुई है। 2014-15 का अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करता है। वर्षों के दौरान, मानसून के परिणामों में अनिश्चितता से पूर्वानुमान एवं आकस्मिक योजना तैयार करने की सटीकता में वस्तुतः कमी आई है। अल नीनो जैसी एकबारगी होने वाली घटनाओं के साथ ही साथ जलवायु परिवर्तन एवं ग्रीनहाउस उत्सर्जनों जैसे संरचनागत कारकों का प्रभाव भी हो रहा होगा। उम्मीद की किरण यह है कि फसलों का उत्पादन की सांख्यिकी की दृष्टि से संवेदनशीलता मानसून में परिवर्तनों की तुलना में निवल बुआई के प्रति अधिक है। इससे, आने वाले समय में भारतीय कृषि को मौसम परिवर्तनों से मुक्त करने के लिए शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों को कृषि योग्य बनाने, बेहतर तकनीकों को व्यवहार में लाने तथा दक्षतापूर्वक जल प्रबंधन करने के माध्यम से निवल बुआई क्षेत्र में वृद्धि करने की रणनीतिक दीर्घावधि योजना तैयार करने को औचित्य प्राप्त होता है।

प्रस्तावना

भारतीय मानसून विश्व के सबसे महत्वपूर्ण तथा सबसे पुराने मौसम पैटर्नों में से एक है। भारतीय उप महाद्वीप में रहने वाली विश्व की 25 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित करने के अपने गहरे आर्थिक प्रभावों के कारण शायद यह अद्वितीय है। अकेले भारत में, मानसून से होने वाली बारिश कृषि क्षेत्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण है जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के 14 प्रतिशत हिस्से को तथा रोजगार के लगभग 50 प्रतिशत हिस्से को दर्शाती है। इसके अलावा, आधे भारत की कृषि भूमि में सिंचाई सुविधाओं का अभाव है। फिर भी, मानसून की भविष्यवाणी करना बेहद मुश्किल भरा काम है और इसके ढंग को समझना अभी भी प्रारंभिक अवस्था में ही है।

भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) ने पूर्वानुमान व्यक्त किया है कि 2015[2] में दक्षिण-पश्चिम मानसून अपने दीर्घावधि औसत (एलपीए)[1] का 93 प्रतिशत रहेगा। इसके साथ ही, 2014-15 में अपने पूर्ण प्रभाव में देखी गई परिणामों की अनिश्चितताएं पुनः प्रकट होने लगी हैं। 2014 के मौसम (जून-सितंबर) के पहले अप्रैल 2014 में भारतीय मौसम विभाग ने अनुमान व्यक्त किया था कि बारिश अपने दीर्घावधि औसत से 5 प्रतिशत कम रहेगी। जून तक यह अनुमान घटाकर 7 प्रतिशत कम कर दिया गया। आखिरकार, बारिश अपने दीर्घावधि औसत से 12 प्रतिशत कम रही, जो पिछले पांच वर्षों में सबसे कम थी। इस घटना ने 2009 में हुई बारिश की 22 प्रतिशत कमी की याद दिला दी जो सूखे में परिणत हुई थी। उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदशे एवं महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में नमी में कमी देखी गई जिसके परिणामस्वरूप चावल, बाजरा, तुअर एवं मूंगफली जैसी फसलों पर खतरा मंडराने लगा। दक्षिण-पश्चिम मानसून की शुरूआत में ही, भारतीय मौसम विभाग ने चेतावनी जारी कर दी थी कि अल नीनो के प्रकट होने की 60 प्रतिशत संभावना है - पूर्वी ऊष्ण कटिबंधीय प्रशांत महासागर में समुद्र तल के तापमान में वृद्धि की एक असामान्य घटना थी जो एक वर्ष तक जारी रह सकती और इसका संबंध भारत में सूखा के असर[3] से था। अंततः इस घटना की संभावना से इंकार किए जाने के पहले जून में इसके होने की 70 प्रतिशत संभावना व्यक्त की गई थी। जून में 43 प्रतिशत की भारी कमी और उत्तर भारत में भारी बाढ़ के बावजूद पौध रोपड़ के मुख्य महीनों, जुलाई और अगस्त में विलंब से मानसून आने तथा सितंबर में अधिक बारिश होने के कारण व्यापक सूखे से बचने में मदद मिली। वस्तुतः इसके कारण सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली और जलाशयों से पोषण पाने वाली गेहूं और सफेद सरसों जैसी शीतकालीन फसलों के लिए संभावनाएं बेहतर हो गईं।

वर्ष के बाद वाले हिस्से में, भारतीय उप महाद्वीप की उत्तरी जमीन के ठंडे होने के कारण दक्षिण-पश्चिम मानसूनी हवाओं के दिशा परिवर्तन कर लेने तथा दक्षिण भारत के धान के कटोरे - कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु, में उत्तर-पूर्वी मानसून के स्थापित हो जाने से भारतीय अर्थव्यवस्था पर दूसरा आघात पड़ा। मौसम (अक्तूबर-दिसंबर) का प्रारंभ दक्षिण-पश्चिमी मानसून की कमी की प्रतिपूर्ति के रूप में उत्तर-पूर्वी मानसून के बढ़िया रहने की संभावनाओं के साथ

---

* आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग, भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई के विकास अध्ययन प्रभाग में तैयार किया गया।

[1] दीर्घावधि औसत (एलपीए), दक्षिण-पश्चिम मानसून (एसडब्लूएम) के लिए भारतीय मौसम विभाग (आईएमडी) द्वारा यथा परिभाषित 1951-2000 की अवधि के लिए जून-सितंबर के दौरान औसत बारिश है जो 890 मिलीमीटर के स्तर पर रही है (http://www.imdpune.gov.in/research/ncc/longrange/longrange_index.html).

[2] अप्रैल 2015.

[3] अल नीनो दक्षिणी परिवर्तन/दोलन (ओएस) - पूर्वी और पश्चिमी ऊष्ण कटिबंधीय प्रशांत महासागर के बीच सतही हवाओं के दबाव में बदलाव के सी-सॉ (झूला) पैटर्न का एक हिस्सा होता है जिसे वैज्ञानिक अल निनो/दक्षिणी परिवर्तन (दोलन) या ईएनएसटो कहते हैं। अल नीनो ''बाल ख्रीस्त (द क्राइस्ट चाइल्ड)'' के लिए स्पेनिश भाषा का शब्द है, क्योंकि इसकी शुरुआत पेरू के तट से होती है और यह क्रिसमस मनाए जाने के आसपास घटित होता है (http://kids.earth.nasa.gov/archive/nino/ intro.html). अल नीनो के तीन से सात वर्षों में एक बार आने की संभावना होती है। अल नीनो आने वाले प्रत्येक वर्ष में भारत में सूखा नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए, 1997-98 में अल नीनो का बहुत जोरदार असर था पर सूखा नहीं पड़ा। दूसरी तरफ, 2002 में आए अल नीनो का प्रभाव हल्का होने के बावजूद सूखा की परिस्थिति देखी गई जो सबसे खराब सूखे की स्थितियों में से एक थी। पूर्वानुमानकर्ताओं को अभी भी अल नीनो के प्रकट होने की संभावना है। जलवायु अनुमान केंद्र, राष्ट्रीय मौसम सेवा तथा अंतरराष्ट्रीय जलवायु अनुसंधान संस्थान एवं सोसायटी का कहना है कि शीत के मौसम में अल नीनो के प्रकट होने तथा 2015 के वसंत के मौसम तक बने रहने की 65 प्रतिशत संभावना है।

हुआ। हालांकि आखिरकार, आंध्र प्रदेश एवं कर्नाटक के दक्षिणी अंदरूनी भाग में मानसून बहुत सक्रिय रहा और तमिलनाडु तथा केरल में सक्रिय रहने के बाद अक्तूबर के मध्य तक इन क्षेत्रों में बारिश फिर से नहीं हुई। उत्तर-पूर्वी मानसून की प्रगति में नवंबर तक दीर्घावधि औसत के 51 प्रतिशत तक गिरावट आई। इस घटना के कारण *रबी* की बुआई में अनपेक्षित विलंब हुआ तथा आंध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में उगाई जाने वाली चना जैसी फसलों की संभावनाओं में कमी आई। इसके अलावा, जलाशयों के निम्न जल स्तरों एवं आद्रता में कमी के कारण गेहूं एवं सरसों जैसी *रबी* फसलों को भी खतरा उत्पन्न हो गया। पूरे मौसम के दौरान बनी रही बारिश की कमी दिसंबर के अंतिम दिनों में और गंभीर हो गई। उत्तर-पूर्वी मानसून के दौरान बारिश में समग्ररूप से 33 प्रतिशत की कमी रही जिसमें *रबी* फसलों की बुआई का रकवा पिछले वर्ष की तुलना में 6.2 प्रतिशत कम रहा।

अंतिम विश्लेषण में, मानसून की स्थिति का मूल्यांकन दक्षिण-पश्चिमी मानसून के मामले में *खरीफ* और उत्तर-पूर्वी मानसून के मामले में *रबी* के उत्पादन के आधार पर किया जाना है। हालांकि यह विभाजन बहुत स्पष्ट नहीं है क्योंकि आद्रता और जलाशयों के स्तर की परिस्थितियाँ मौसमों के दौरान बदलती रहती हैं। कृषि मंत्रालय के द्वितीय अग्रिम अनुमानों (18 फरवरी, 2015 को जारी किए गए) से संकेत मिलता है कि खाद्यान्नों का उत्पादन 2013-14 (अंतिम) की तुलना में सिर्फ 3.2 प्रतिशत ही कम रहेगा, यद्यपि दालों के उत्पादन पर अधिक बुरा असर पड़ा होगा, जो 7.1 प्रतिशत कम होगा। इन घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में, इस लेख में निम्नलिखित प्रश्न खड़े किए गए हैं : (I) अपर्याप्त होने के बावजूद मानसून की अनिश्चितताओं की व्याख्या, कम से कम उपलब्ध जानकारी के आधार पर, कैसे की जा सकती है ? क्या अल नीनो जैसे एकबारगी होने वाले प्रभाव कार्यशील होते हैं या अधिक गंभीर परिवर्तनों की प्रक्रिया जारी है ? (II) भारतीय कृषि की संभावनाओं पर इन सभी का क्या प्रभाव पड़ता है - क्या वे मौसम के परिवर्तनों से अप्रभावित हैं या अभी भी मानसून का असर पड़ता है ? इस लेख का शेष भाग पांच खंडों में विभाजित है। भाग II में मानसून के बारे में कुछ अस्वाभाविक (स्टाइलाइज्ड) तथ्यों तथा संबंधित फसल पैटर्नों के बारे उल्लेख है। भाग III में भारत में बारिश के पैटर्नों पर अल नीनो घटनाओं के महत्व को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है। मौसम परिवर्तन जैसे संरचनागत परिवर्तनों तथा मानसून पर इसके असर पर भी चर्चा की गई है। भाग IV में कृषि और मानसून के बीच संबंधों के निर्धारक कारकों की भी जांच की गई है। भाग V में कुछ मध्यावधि नीतिगत परिप्रेक्ष्यों के साथ समापन किया गया है।

II. कुछ अस्वाभाविक (स्टाइलाइज्ड) तथ्य

दक्षिण-पश्चिम मानसून

खरीफ फसलों की अवधि के दौरान देश में होने वाली कुल बारिश का 75-80 प्रतिशत भाग दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण प्राप्त होता है। बारिश की तीव्रता (सामान्य बारिश से परिवर्तन के रूप में व्यक्त की गई) एवं बुआई की गतिविधियों (चार्ट 1) में

चार्ट 1 : दक्षिण-पश्चिम मानसून एवं *खरीफ* फसलें

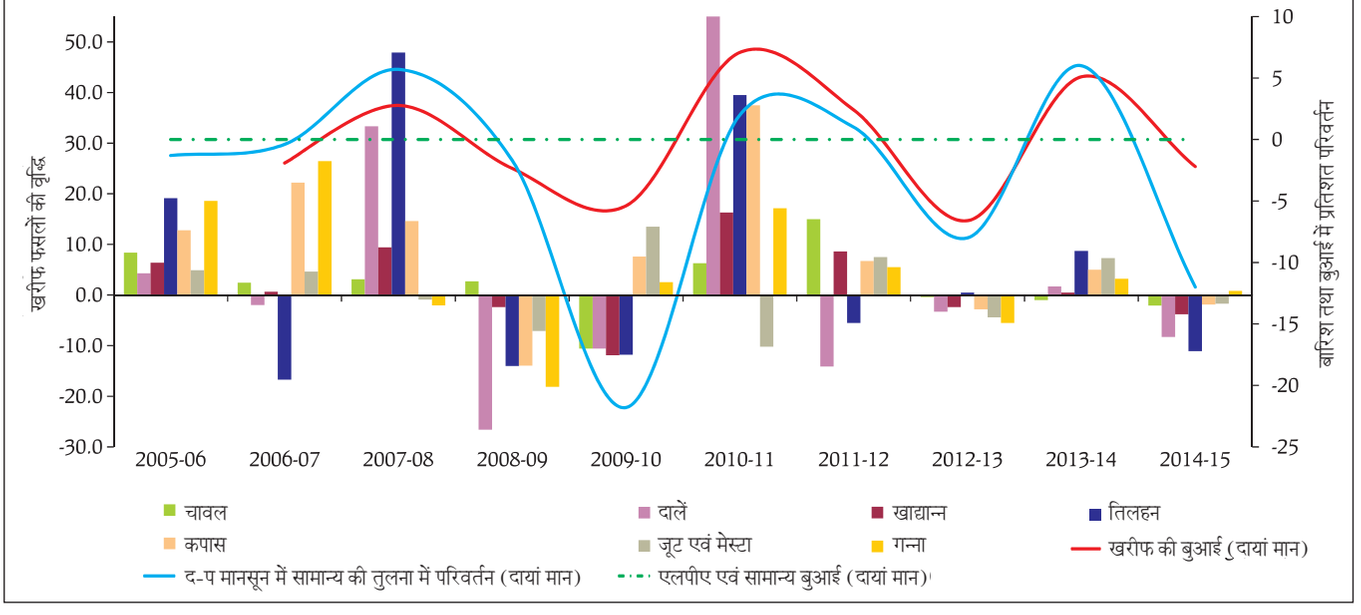

परस्पर परिवर्तनों का पर्याप्त बारीकी से प्रेक्षण किया गया है। मौसम के दौरान, जिस हद तक मिट्टी में नमी लौटती है और जलाशयों का भराव होता है, उससे भी आने वाले फसल के मौसमों की संभावनाओं का निर्धारण होता है।

2014 में, दक्षिण-पश्चिम मानसून अंदमान सागर के मार्ग से, सामान्य तारीख -20 मई से 2 दिन पहले आ चुका था, परंतु केरल में यह सामान्य तारीख - 1 जून से 5 दिनों के बाद हुई। शुरुआत में इस विलंब, असामान्य वितरण एवं अत्यधिक कमी के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में मौसम के प्रारंभ में ही सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ा। बाद में, 17 जुलाई तक पूरे देश में बारिश आने से स्थिति में सुधार हुआ। 2014 में दक्षिण-पश्चिम मानसून से देश भर के भौगोलिक रूप से एक समान क्षेत्रों, नामतः उत्तर-पश्चिमी भार, मध्य भारत, दक्षिणी प्रायद्वीप और उत्तर-पूर्व भारत, में क्रमशः 21 प्रतिशत, 10 प्रतिशत, 7 प्रतिशत और 12 प्रतिशत कम हुई बारिश हुई। इन घटनाओं से मानसून संभावनाओं के पूर्वानुमानों की न्यून क्षमताएं रेखांकित होती हैं (बॉक्स 1)।

बॉक्स 1 : दक्षिण-पश्चिमी मानसून का पूर्वानुमान लगाना

यह पुरानी कहावत आज भी सत्य है कि भारत का बजट मानसून से होने वाली बारिश पर लगाया गया दांव होता है। हिमालय में होने वाली बर्फबारी के आधार पर बारिश होने के बाद पहला अस्थायी अनुमान 1882 में लगाया गया और 1877 में देश भर में सूखा पड़ने से इस कार्य को प्रोत्साहन मिला। 1886 में इस अस्थायी अनुमान की सफलता से प्रेरित होकर सर एच.एफ. ब्लान्फोर्ड, भारतीय मौसम विभाग के पहले प्रधान रिपोर्टर, के नेतृत्व में दक्षिण-पश्चिम मानसून के दीर्घावधि अनुमान नियमित रूप से किए जाने लगे। मौसम के अत्तरार्ध (अगस्त-सितंबर) के लिए दीर्घावधि अनुमानों की शुरूआत 1892 में हुई। तब से, भारतीय मौसम विभाग दीर्घावधि अनुमान और अल्पावधि - दो चरण में अनुमान जारी करता आया है, हालांकि इसके प्रारूप और अवयवों में परिवर्तन हुआ है।

अनुमानों को और बेहतर करने की तलाश सर गिल्बर्ट टी. वाकर, भारतीय मौसम विभाग के महानिदेशक (1904-1924) के नेतृत्व के अधीन भी जारी रही। शुरूआत में सहसंबंध और समाश्रयण की तकनीकों को आजमाया गया। दीर्घावधि अनुमानों और अल्पावधि अनुमानों के शुरूआती चिह्नित अनुमान दक्षिणी दोलन, उत्तरी प्रशांत दोलन तथा उत्तरी-प्रशांत दोलन से संबंधित थे। 1988 में, भारतीय मौसम विभाग ने 16-मानदंडों वाली पॉवर रिग्रेशन और मानक आधारित मॉडलों का शुरूआत की। हालांकि, दक्षिण-पश्चिमी मानसून का पूर्वानुमान करने में 2002 की विफलता के कारण भारतीय मौसम विभाग ने 2003 में दो चरण वाली पूर्वानुमान रणनीति की शुरूआत की। मौसम के प्रथम चरण के अनुमान, जिनमें पांच सजातीय भौगोलिक क्षेत्रों से संबंधित अनुमान भी शामिल होते हैं, अप्रैल में जारी किए गए जिनमें आठ-मानदंडों एवं आठ-मानदंड वाले पॉवर रिग्रेशन (पीआर) मॉडल तथा लीनियर डिस्क्रिमिनेंट एनालिसिस (एलडीए) मॉडल का प्रयोग किया गया। दूसरे चरों के अनुमान जून में जारी किए गए जिसमें 10 मानदंडों वाले पॉवर रिग्रेशन (पीआर) मॉडल तथा लीनियर डिस्क्रिमिनेंट एनालिसिस (एलडीए) मॉडल का प्रयोग किया गया।

2007 से, भारतीय मौसम विभाग नई सांख्यिकीय पूर्वानुमान प्रणाली का प्रयोग कर रहा है जो देश में ही विकसित पूर्वानुमान करने की 'इनसेंबल' तकनीक पर आधारित है। अनुमान के पहले चरण में संबंद्ध अवधियों के लिए पांच पूर्वानुमान के कारकों, नामतः उत्तरी अटलांटिक और उत्तरी प्रशांत महासागर के बीच समुद्री सतह का तापमान (एसएसटी) अनुपात, पूर्वी एशिया में समुद्र की सतह का औसत दबाव, उत्तर-पश्चिमी यूरोप की धरती की सतह में वायु का तापमान एवं भूमध्यवर्ती क्षेत्र में प्रशांत महासागर में गर्म पानी की मात्रा, का प्रयोग किया जाता है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून के जून के पूर्वानुमान में छह मानदंडों का प्रयोग किया जाता है जो इस प्रकार हैं - मध्यवर्ती प्रशांत महासागर में समुद्री सतह का तापमान (नीनो 3.4) (एसएसटी) का प्रयोग किया जाता है, उत्तरी अटलांकि महासागर की समुद्री सतह का औसत दबाब, उत्तरी-मध्यवर्ती प्रशांत महासागर के जोन 850 में हवाओं का अनुपात तथा अप्रैल के पूर्वानुमान में प्रयुक्त प्रथम तीन मानदंड। मौसम के उत्तरार्ध में भारतीय मौसम विभाग द्वारा जून में जारी किए जाने वाले पूर्वानुमान में मुख्य अवयवों के विश्लेषण (प्रिंसिपल कांपोनेंट एनालिसिस) मॉडल का प्रयोग किया जाता है। इन पूर्वानुमानों के अलावा, भारतीय मौसम विभाग भारत और विदेशों के विभिन्न मौसम अनुसंधान केंद्रों से समन्वय करते हुए दक्षिण-पश्चिमी मानसून के संबंध में प्रायोगिक पूर्वानुमान व्यक्त करता है जिसमें संयुक्त पूर्वानुमान प्रणाली (सीएफएस) का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ प्रायोगिक मॉडल इस प्रकार हैं - इनसेंबल मल्टीपल लीनियर रिग्रेशन (ईएमआर), द प्रोजेक्शन परश्यूट रिग्रेशन (पीपीआर), द प्रिंसिपल कांपोनेंट रिग्रेशन (पीसीआर) एवं आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क (एएनएन)।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून के पूर्वानुमान बाहरी निर्धारकों में बहुत अधिक अनिश्चितताओं के कारण कमजोर होते हैं। अप्रैल 2014 में ही अमेरिका के राष्ट्रीय समुद्री एवं पर्यावरणीय प्रभान ने *अल नीनो* आने की संभावना 50 प्रतिशत से अधिक जता दी और आस्ट्रेलियाई मौसम ब्यूरो ने इसकी संभावना 70 प्रतिशत बता दी। तदनुसार, मौसम

(जारी...)

दीर्घ कालिक पूर्वानुमान तथा वास्तविक बारिश 2014

क्षेत्र	अवधि	पूर्वानुमान (एलपीए का प्रतिशत)			वास्तविक (एलपीए का प्रतिशत)
		24 अप्रैल	9 जून (प्रथम सुधार)	12 अगस्त (द्वितीय सुधार)	
संपूर्ण भारत	जून से सितंबर	95 ± 5	93 ± 4	87 ± 4	88
उत्तर-पश्चिमी भारत	जून से सितंबर		85 ± 8	76 ± 8	79
मध्यवर्ती भारत	जून से सितंबर		94 ± 8	89 ± 8	90
उत्तर-पूर्वी भारत	जून से सितंबर		99 ± 8	93 ± 8	88
दक्षिणी प्रायद्वीप	जून से सितंबर		93 ± 8	87 ± 8	93
संपूर्ण भारत	जुलाई		93 ± 9	–	90
संपूर्ण भारत	अगस्त		96 ± 9	96 ± 9	90
संपूर्ण भारत	अगस्त से सितंबर		–	95 ± 8	97

विभाग ने जून में जारी किए गए अपने दीर्घावधि बारिश के अनुमान में अल नीनो आने की संभावना बढ़ाकर 70 प्रतिशत बता दिया, जो पहले 60 प्रतिशत व्यक्त की गई थी, किंतु बारिश प्रारंभ हो जाने से अल नीनो आने की संभानाएं अगस्त में घटाकर 50 प्रतिशत कर दी।

2015 के संबंध में, अमेरिकी राष्ट्रीय समुद्री एवं पर्यावरण प्रशासन (एनओएए), मध्य कालिक मौसम पूर्वानुमान के यूरोपीय केंद्र, आस्ट्रेलिया के मौसम ब्यूरो तथा जापानी समुद्री-भू विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ऐजेंसी मानसून के सक्रिय होने में बिना कोई विशेष विलंब के सामान्य दक्षिण-पश्चिमी मानसून की संभावना जता रहे हैं। इन ऐजेंसियों के अनुसार वर्तमान में *अल नीनो* कमजोर है, हालांकि एनओएए ने कमजोर *अल नीनो* के 2015 के ग्रीष्म काल में मजबूत होने की 50-60 प्रतिशत संभावना व्यक्त की है।

सभी 36 मौसम उप-संभागों में, दक्षिण-पश्चिम मानसून पैटर्न में काफी विविधता देखी गई। जून महीने में कुल 36 उप-संभागों में से 31 उप-संभागों में कम/थोड़ी बारिश हुई। मौसम के दौरान सभी चार महीनों में चार (4) उप-संभागों (अर्थात्, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं तेलंगाना) में बारिश कम/थोड़ी ही हुई। संयुक्त रूप से, 23 उप-संभागों (देश के कुल क्षेत्रफल का 67 प्रतिशत) में सामान्य बारिश हुई, 12 उप-संभागों (30 प्रतिशत क्षेत्रफल) में कम बारिश हुई तथ एक उप-संभाग-दक्षिण अंदरूनी कर्नाटक (3 प्रतिशत क्षेत्रफल) में बारिश का अतिरेक हुआ। जिन 12 उप-संभागों में कम/थोड़ी बारिश हुई, उनमें से 6 उप-संभाग उत्तर-पश्चिमी भारत से थे, 2 मध्य भारत से, एक उत्तर-पूर्वी भारत से तथा 3 दक्षिणी प्रायद्वीप से थे।

रिज़र्व बैंक द्वारा क्षेत्र भारांकित औसत बारिश के आधार पर तैयार किए गए खाद्यान्न उत्पादन भारित बारिश सूचकांक (पीआरएन)[4] से पता चलता है कि दक्षिण-पश्चिम मानसून 2014 दीघावधि औसत 23 प्रतिशत कम रहा जबकि भारतीय मौसम विभाग ने इसके दीर्घावधि औसत से 12 प्रतिशत कम रहने की बात (माप) कही थी। खाद्यान्न उत्पादन भारित बारिश सूचकांक, खाद्यान्न उत्पादन पर बारिश के प्रभाव की दृष्टि से अधिक सार्थक है (चार्ट 2)।

चार्ट 2 : उत्पादन भारांकित बारिश सूचकांक

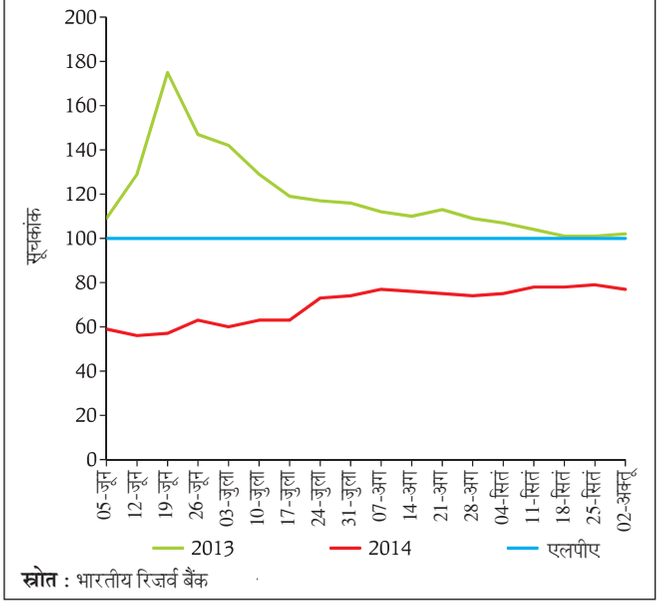

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक

[4] उत्पादन भारांकित बारिश सूचकांक का 100 होना सामान्य बारिश को दर्शाता है जिसमें राज्य-वार भारांकों को किसी राज्य में पिछले 10 वर्षों के लिए समग्र खाद्यान्नों के समग्र उत्पादन के औसत हिस्से के रूप में लिया जाता है।

सारणी 1 : जलाशयों की स्थिति

स्थिति	01.10.2008	01.10.2009	30.9.2010	29.9.2011	27.9.2012	03.10.2013	01.10.2014
	(81 जलाशय)	(81 जलाशय)	(76 जलाशय)	(81 जलाशय)	(84 जलाशय)	(85 जलाशय)	(85 जलाशय)
कुल लाइव भंडार (बीएमसी)	111.96	90.48	114.45	131.49	115.8	133.5	121.39
एफआरएल पर लाइव भंडार की तुलना में प्रतिशत (प्रतिशत)	74	60	75	87	75	86.0	78

स्रोत: केंद्रीय जल आयोग।

जलाशयों की स्थिति के संबंध में, मौसम के अंत में (1 अक्तूबर, 2014) देश भर में प्रमुख 85 जलाशयों में कुल भंडारण की तुलना में लाइव भंडार का अनुपात 78 प्रतिशत रहा जबकि एक वर्ष पहले[5] यह अनुपात 86 प्रतिशत था। दक्षिण-पश्चिम मानसून के में कमी ने जलाशयों के भराव पर विपरीत प्रभाव डाला और कुछ हद तक, इसके कारण *खरीफ* फसलों की प्रतिपूर्ति *रबी* के संभावना से कम उत्पादन होन पर भी पड़ा (सारणी 1)।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून के देरी से आने, मौसम के शुरूआती भाग में बहुत अधिक कमी तथा असमान वितरण के बावजूद बारिश में सुधार होने से जुलाई के मध्य में *खरीफ* की बुआई में सुधार आया किंतु बुआई के क्षेत्रफल की दृष्टि से सामान्य स्थिति को प्राप्त नहीं कर सका और एक वर्ष पहले की स्थिति की तुलना में 2.2 प्रतिशत कम बुआई हुई। बुआई में कमी के कारण अधिकांश *खरीफ* फसलों के उत्पादन में गिरावट आई (सारणी 2)।

उत्तर-पूर्वी मानसून

उत्तर-पूर्वी मानसून (अक्तूबर-दिसंबर), जिसे मानसून के बाद की बारिश भी कहा जाता है, प्रत्येक वर्ष देश में होने वाली कुल बारिश के लगभग 10 प्रतिशत का स्रोत होता है। उत्तर-पश्चिमी मानसून के सामान्य होने से *रबी* फसलों की शुरूआत अच्छी होती है फिर भी उनके उत्पादन की संभावनाओं पर जलाशयों एवं मिट्टी

सारणी 2 : *खरीफ* की बुआई एवं उत्पादन में प्रगति

(क्षेत्रफल मिलियन हेक्टेयर में तथा उत्पादन मिलियन टन में)

फसलें	अक्तूबर 10 में बुआई			उत्पादन		प्रतिशत परिवर्तन	
	सामान्य पूर्ण मौसम	2013	2014	2013-14	2014-15*	बुआई 2014 (कालम 4/कालम3)	उत्पादन 2014-15 (कलम6/कालम5)
1	2	3	4	5	6	7	8
खाद्यान्न	**70.6**	**68.2**	**66.5**	**128.7**	**123.8**	**-2.5**	**-3.8**
चावल	39.1	37.6	38	91.5	89.6	1.1	-2.1
मोटे अनाज	20.8	19.6	18.2	31.2	28.7	-7.1	-8.0
ज्वार	7.2	8.2	7.8	17.1	16.5	-4.9	-3.5
दालें	10.8	10.9	10.2	6	5.5	-6.4	-8.3
तुअर	3.8	3.9	3.6	3.2	2.8	-7.7	-12.5
उड़द	2.3	2.4	2.5	1.2	1.2	4.2	0.0
तिलहन	18.3	19.5	17.8	22.6	20.1	-8.7	-11.1
मूंगफली	4.6	4.3	3.7	8.1	5.6	-14	-30.9
सोयाबीन	10	12.2	11	11.9	11.6	-9.8	-2.5
गन्ना	4.7	5	4.9	352.1	355	-2	0.8
कपास #	11	11.4	12.7	35.9	35.2	11.4	-1.9
जूट एवं मेस्ता ##	0.9	0.8	0.8	11.7	11.5	0	-1.7
सभी फसलें	**105.5**	**105.0**	**102.7**	**-**	**-**	**-2.2**	**-**

#: प्रत्येक 170 किग्रा की मिलियन बेल्स । ##: प्रत्येक 180 किग्रा की मिलियन बेल्स। -: उपलब्ध नहीं।
*: दूसरे अग्रिम पूर्वानुमान
स्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

[5] भारत में, केंद्रीय जल आयोग प्रमुख 85 जलाशयों में कुल लाइव जल संग्रह की निगरानी करता है जिनकी क्षमता पूर्ण जलाशय स्तर (एफआरएल) होने पर 155.05 बिलियन घन मीटर (बीएमसी) की है।

चार्ट 3 : उत्तर-पूर्वी मानसून एवं *रबी* फसलें

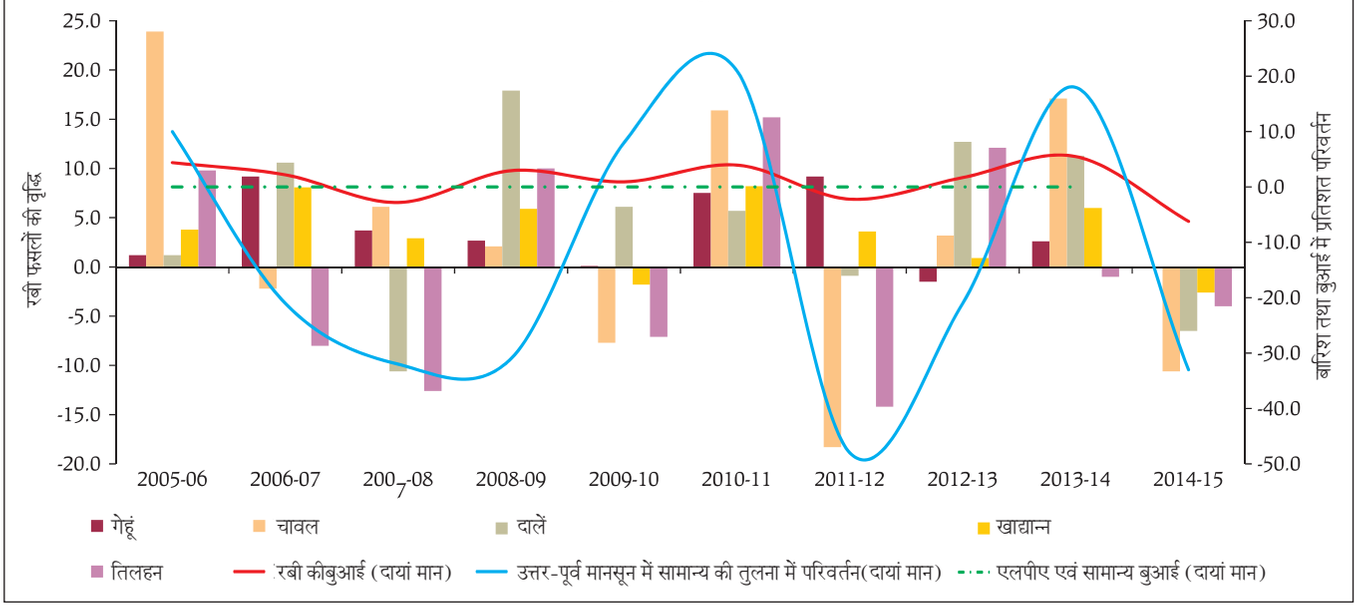

में नमी के उपस्थित होने का प्रभाव पड़ता है। पिछले दस वर्षों के दौरान, कुल उत्पादन में खाद्यान्नों और दालों का योगदान क्रमशः 49 प्रतिशत और 65 प्रतिशत रहा। 2014-15 के दौरान गेहूं को छोड़कर अधिकांश *रबी* फसलों के उत्पादन में गिरावट आई (चार्ट 3)।

2014 के दौरान, यह संभावित था कि सितंबर के दौरान दक्षिण-पश्चिम मानसून की वापसी होने और मौसम के अंत में अल नीनो के कमजोर पड़ने की संभावनाओं से वर्षण की तुलना में ऋण लेना जारी रहने की दृष्टि से उत्तर-पूर्वी मानसून में लाभ होगा। हालांकि, दक्षिणी प्रायद्वीप में 18 अक्तूबर तक तक उत्तर-पूर्वी मानसून नहीं आया था, जहां पर मौसम के दौरान प्रमुखता से वर्षण होता है। पूरे मौसम के दौरान बारिश में कमी रही।अक्तूबर के अंतिम सप्ताह, मध्य नवंबर एवं मध्य दिसंबर को छोड़कर, अक्तूबर, नवंबर एवं दिसंबर के दौरान उत्तर-पूर्वी मानसून से देश में होने होने वाली बारिश दीर्घावधि औसत की तुलना में समग्र रूप से क्रमशः 75 प्रतिशत, 49 प्रतिशत एवं 64 प्रतिशत कम रही।

प्रारंभ में, उत्तर-पूर्वी मानसून के देरी से आने के कारण *रबी* की बुआई में अप्रत्याशित विलंब हुआ। नवंबर के अंत में, सभी *रबी* फसलों की बुआई पिछले वर्ष की तुलना में 4.7 प्रतिशत कम और फरवरी 2015 के अंत तक इसमें 6.2 प्रतिशत की कमी आई। बारिश में कमी से जलाशयों के भराव पर भी विपरीत असर पड़ा और 85 प्रमुख जलाशयों में कुल भंडारण की तुलना में लाइव भराव का अनुपात नवंबर के अंत में रहे 69 प्रतिशत से घटकर फरवरी के अंत में 43 प्रतिशत रह गया। कृषि मंत्रालय के द्वितीय अग्रिम अनुमानों से संकेत मिलता है कि 2014-15 के दौरान खाद्यान्नों एवं तिलहनों का उत्पादन पिछले वर्ष के स्तर की तुलना में क्रमशः 2.6 प्रतिशत एवं 4.0 प्रतिशत कम था (सारणी 3)।

III. मानसून की अनिश्चितताओं का पता लगाना

भारतीय मानसून की एक प्रमुख विशेषता इसमें बहुत अधिक परिवर्तन होना है। किसी साल बहुत अधिक बारिश होने भारत के बहुत से हिस्सों में बाढ़ आ जाती है और दूसरे साल बहुत कम या बिल्कुल बारिश नहीं होने से सूखा पड़ जाता है। कुछ वर्षों में बारिश की मात्रा सामान्य होती है किंतु इसके आने का समय प्रत्याशित समय से अलग हो जाता है/या इसका वितरण बहुत विषम हो जाता है। मानसून के बनने, इसके शुरू होने एवं इसके फैलाव को बहुत से कारक प्रभावित करते हैं। भूमि और सागर के तापमान में अंतर, वातावरण में दबाव में अंतर, जो पूरी पृथ्वी में तापीय ऊर्जा को वितरित करता है, हवा की धाराओं के बदलने और यहां तक कि अरब सागर के ऊपर मरूस्थलीय गर्द जैसे कम प्रायिकता वाले कारक भी मानसून का कारक बनते हैं। यह भी माना जाता है कि अन्य गूढ़ कारकों का इसका प्रभाव पड़ता होगा और ये कारक उनका सिर्फ एक आवरण आवरण मात्र हों।

सारणी 3 : *रबी* की बुआई एवं उत्पादन में प्रगति

(क्षेत्रफल मिलियन हेक्टेयर में तथा उत्पादन मिलियन टन में)

फसलें	बुआई फरवरी 13			उत्पादन		प्रतिशत परिवर्तन	
	सामान्य पूर्ण मौसम	2014	2015	2013-14	2014-15*	बुआई 2014 (कालम 4/कालम3)	उत्पादन 2014-15 (कालम6/कालम5)
1	2	3	4	5	6	7	8
खाद्यान्न	**52.8**	**56.7**	**53.5**	**136.9**	**133.3**	**-5.6**	**-2.6**
चावल	4.3	2.9	2.5	15.2	13.5	-13.8	-11.2
गेहूं	29.0	31.5	30.6	95.9	95.8	-2.9	-0.1
मोटे अनाज	6.2	6.0	5.8	12.1	11.1	-3.3	-8.3
मेड्ज	1.3	1.6	1.5	7.1	6.5	-6.3	-8.5
दालें	13.2	16.2	14.6	13.8	12.9	-9.9	-6.5
उड़द	0.8	0.8	0.9	0.6	0.5	12.5	-16.7
तिलहन	8.7	9.0	8.1	10.1	9.7	-10.0	-4.0
मूंगफली	0.9	0.8	0.7	1.7	1.8	-12.5	5.9
सभी फसलें	**61.4**	**65.7**	**61.6**	**-**	**-**	**-6.2**	**-**

-: उपलब्ध नहीं

* दूसरे पूर्वानुमान

स्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

अल नीनो

पिछले 50 वर्षों में *अल नीनो* की परिस्थितियां 31 प्रतिशत बार उत्पन्न हुई हैं (अर्थ साइंस, 2014)। हालांकि, अल नीनो के सक्रिय रहने से हमेशा सूखा नहीं पड़ा है। 1950 से, भारत में पड़ने वाले 5 प्रमुख सूखा में से अल नीनो के संबंध को देखा जाए तो सबसे भयानक 20वीं शताब्दी का *अल नीनो* था जो 1997-98 में आया, किंतु इसके कारण सूखा नहीं पड़ा बल्कि भारत में औसत से अधिक बारिश हुई। इसके विपरीत, 2002 में अल नीनो कमजोर/औसत दर्जे का था किंतु मानसून में अत्यधिक कमी देखी गई। वस्तुतः, 1950 के दशक से अल नीनो वाले वर्षों में ग्रीष्म कालीन बारिश औसत से काफी कम और औसत तथा औसत दर्जे से अधिक स्तर पर रही (डिलिबर्टो, 2014)। साहित्य (दस्तावेजों) का एक हिस्सा यह भी संकेत देता है कि अल नीनो और भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून से होने वाली बारिश के विपरीत संबंधों में हाल के दशको में कमजोरी आई है। 1856 से 1997 की अवधि में मानसून से होने वाली बारिश तथा अल नीनो सूचकांक में 21-वर्षीय बदलता हुआ सहसंबंध बहुत बजबूत रहा है किंतु 1970, 1980 एवं 1990 के दशकों में यह अपेक्षाकृत कमजोर रहा है (कुमार ईटी एएल., 1999)।

मानसून के अध्ययन से दो संभावित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, प्रशांत महासागर के विशिष्ट स्थान पर तापमान बढ़ना भारतीय मानसून का महत्वपूर्ण निर्धारक होता है। यह देखा गया है कि जिन वर्षों में अल नीनो आता है, उन वर्षों में प्रशांत महासागर के तापमान में वृद्धि भिन्न स्थानों पर होती है। उदाहरण के लिए 2002 में, जब भारत में मानसून से बहुत कम बारिश हुई थी, प्रशांत महासागर के मध्य भाग में तापमान बढ़ा था जबकि 1997 में, जबकि 20वीं शताब्दी का सबसे भयंकर अल नीना आया था जिसका पहले जिक्र किया गया है, प्रशांत महासागर के पूर्वी हिस्से में तापमान बढ़ा था, तब भारत पर प्रभाव नहीं पड़ा था। दूसरा, सर्दी एवं बसंत में यूरेशिया क्षेत्र में सतह का तापमान बढ़ने से, जो वैश्विक तापमान वृद्धि की प्रवृत्ति के अनुसार है, जमीन और समुद्र के बीच तापमान के परिवर्तन को बढ़ा सकता है जो मानसून के जोरदार होने के अनुकूल होता है। इस बात की इस तथ्य से पुटि होती है कि जनवरी और फरवरी के दौरान उत्तरी गोलार्द्ध की सतह का तापमान और उसके बाद होने वाली ग्रीष्मकालीन मानसूनी बारिश में सकारात्मक सहसंबंध होता है। हाल में हुए कुछ अध्ययनों से भी यह पता चला है कि वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ने से एशिया में ग्रीष्म कालीन मानसून से हाने वाली बारिश बढ़ जाती है। इन प्रेक्षणों से यह संभावना बढ़ जाती है कि अल नीनो घटनाओं के जोरदार रहने बावजूद यूरेशिया क्षेत्र में तापमान बढ़ने से हाल के दशकों में मानसून से होने वाली बारिश को सामान्य स्तर पर बनाए रखने में मदद मिली है (कुमार ईटी एएल., 2006)।

स्थानिक एवं सामयिक वितरण

हाल के अनुभव से पता चलता है कि सिर्फ वर्षण की समग्र मात्रा स्वतः कृषि उत्पादन को प्रभावित नहीं करती है बल्कि होने वाली बारिश का स्थानिक एवं सामयिक वितरण इसे प्रभावित करता है। इसलिए, मानसून के प्रारंभ, मौसम के दौरान बारिश के सक्रिय दिनों एवं उनमें अंतराल, सामयिक और स्थानिक -दोनों, के पैटर्न को समझने का महत्व बढ़ गया है। 1951 से 2007 के दौरान इस संबंध में हुए अध्ययनों से पता चलता है कि जुलाई-अगस्त के दौरान औसतन सात दिनों की सक्रियता और अंतराल की घटनाएं हुईं। सामान्यतः, अंतराल के दौर (बिना वर्षा के दौर) सक्रिय दौरों की तुलना में लंबे समय के लिए होते हैं। इस अवधि के दौरान, सक्रिय दौर के लगभग 80 प्रतिशत तीन से चार दिनों के हुए (राजीवन एम. ईटीएएल.)। असामान्य ठंड या गर्मी की परिस्थतियों, ओलावृष्टि, बाढ़ एवं चक्रवात जैसी चरम प्रभाव वाली मौसमी घटनाएं भी बारिश की परिस्थितियों को काफी प्रभावित करने वाली और फसलों के उत्पादन को प्रभावित करने वाली पाई गई हैं। उदाहरण के लिए, मार्च 2004-05 में भारत-गंगा के मैदान में तापमान 3 से 6 डिग्री अधिक था। परिणामस्वरूप, गेहूं की फसल अपने सामान्य समय से 10-20 दिन पहले परिपक्व हो गई और इसका उत्पादन चार मिलियन टन (15वीं लोक सभा की कृषि से संबंधित समिति - 2010-11 की 26वीं रिपोर्ट) से अधिक घट गया। हालांकि, देश के अधिकांश हिस्सों (गुहतकुर्ता पी. ईटी एएल., 2010) में बारिश वाले दिनों की बारंबारता में कमी की प्रवृत्ति देखी गई है। महाराष्ट्र से लगे हुए पश्चिमी तट के उत्तरी हिस्सों में हुई अत्यधिक बारिश की घटनाओं में काफी वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई है (जोशी यू.आर. एवं एम राजीवन, 2006)।

संरचनागत परिवर्तन

वैश्विक मौसम परिवर्तन का संबंध तापमान की वैश्चिक वृद्धि, बर्फ के आवरण में कमी, समुद्री स्तर में बढ़ोत्तरी, भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं की बारंबारता में वृद्धि, मृदा तथा जल संसाधनों में कमी और बारिश के पैटर्न में परिवर्तनों से होता है। पिछले 50 वर्षों के दौरान विश्व भर में तापमान वृद्धि की दर (0.24 डिग्री फेरेनहीट प्रति दशक) पिछले 100 वर्षों में हुई तापमान वृद्धि की दर (0.13 डिग्री फेरेनहीट प्रति दशक) से लगभग दोगुनी है (ईपीए, अप्रैल 2010)। यह अनुमान लगाया गया है कि औसत वैश्विक तापमान में में 1-3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने से कम ऊंचाई वाले स्थानों पर कुछ अनाजों की उत्पादकता में कमी आती है जबकि अधिक ऊंचे स्थानों पर उत्पादकता में वृद्धि होती है। हालांकि, औसत वैश्विक तापमान में 3-4 डिग्री सेल्सियस से अधिक की वृद्धि होने पर सभी स्थानों पर उत्पादकता कम हो जाएगी।

वैश्विक औसत तापमान में 2030 के दशक तक 0.5-1 डिग्री सेल्सियस तक, 2080 के दशक तक 2-4.5 डिग्री सेल्सियस और 2100 तक 1.4-5.8 डिग्री सेल्सियस बढ़ने का अनुमान व्यक्त किया गया है। इसके साथ ही, वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की वैश्विक सघनता 350 पार्ट्स प्रति मिलियन (पीपीएम) के सुरक्षित स्तर से 2030 तक बढ़कर 400 पार्ट्स प्रति मिलियन हो जाने की संभावना है। तापमान के बढ़े हुए स्तर, वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की सघनता के बढ़े स्तर पर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तीव्र होने की संभावना है जिसका बहुत सी फसलों पर उर्वरता बढ़ने वाला प्रभाव पड़ सकता है। वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ने और सिर्फ 0.5-1 डिग्री सेल्सियस तक तापमान में वृद्धि होने के लाभों को देखते हुए, 2030 तक मौसम परिवर्तन के वैश्विक खाद्यान्न उत्पादन के समग्र रूप से हाने वाले परिवर्तन का प्रभाव बहत कम होने की संभावना है (आईपीसीसी 2007, डब्लूजी II)। समशीतोष्ण क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि होने की संभावना है। ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तापमान बढ़ने के कारण वाष्पन बढ़ने से मृदा में आद्रता का स्तर कम हो जाएगा, जिससे कृषि किए जाने वाले कुछ क्षेत्र फसल उत्पादन के लिए अनुपयुक्त हो जाएंगे तथा ऊष्णकटिबंधीय घास के मैदान बंजर जमीन में तब्दील होते जाएंगे। पूर्वी एशिया, साहेल और दक्षिणी अफ्रीका में, मौसम परिवर्तन के कृषि पर परिणाम फायदेमंद या नुकसानदेह हो सकते हैं। दूसरे विकासशील क्षेत्रों में उत्पादन में कमी आने की अधिक संभावना है। इन सभी मामलों में, 2030 तक उत्पादन में $\pm$ 2.5 प्रतिशत और 2050 तक $\pm$ 5 प्रतिशत तक परिवर्तन आने की संभावना है (एफएओ, 2003)।

तापमान में वृद्धि होने से, रूखे मौसम में जीवित रहने की बढ़ी हुई क्षमता वाले कृषि कीटों में भी वृद्धि हो सकती है, जबकि सागर के तापमान में वृद्धि होने से प्लवकों की वृद्धि कम हो जाएगी और मछलियों के प्रजनन एवं भोजन के पैटर्न में परिवर्तन हो जाएगा। जैसे कि संभावना जताई गई है, 2030 तक औसत समुद्री सतह के स्तर के 15 से 20 सेंटीमीटर तक और 2100 तक 50 सेंटीमीटर तक ऊपर आ जाने से बाढ़, समुद्री जल के अतिक्रमण और तूफान के उमड़ने के कारण निचले स्तर की जमीन का नुकसान हो सकता है। इसका, निचले स्तर के क्षेत्रों में सब्जियों के उत्पादन और मत्स्यपालन तथा मेंग्रोव क्षेत्र के जलमग्न होने पर निर्भर रहने वाले

[6] जलवायु परिवर्तन से संबंधित अंतर-सरकारी पैनल (आईपीसीसी) 2007 के कार्य दल II का संबंध ''प्रभाव, अनुकूलन और कमजोरियों'' से है।

मत्स्यपालन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव समुद्र तटीय क्षेत्रों पर सर्वाधिक होगा, विशेषरूप से बांग्लादेश, चीन, इजिप्त, भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया मुख्य भूभाग के डेल्टा क्षेत्र जिनमें भारी जनसंख्या निवास करती है।

2030 तक अकेले भारत में लगभग 1,000 से 2,000 वर्ग मीटर की हानि हुई है जिससे 70,000 से 150,000 जीविकाएं तबाह हुई हैं (एफएओ, 2003)। असल में, जलवायु में परिवर्तन का गरीबों पर प्रतिकूल प्रभाव अनुपातहीन रूप से ज्यादा पड़ने की संभावना है। सूखा ग्रस्त, बाढ़ ग्रस्त, पानी में नमक की अधिकता या समुद्री क्षेत्रों में रहने वाले छोटे पैमाने के कृषक एवं अन्य निम्न आय वर्ग बुरी तरह से प्रभावित होंगे। उच्चतर समुद्री तापमान एवं जल-प्रवाह में परिवर्तन के कारण मछुआरों के मछली पकड़ने के व्यवसाय में प्रभाव पड़ सकता है। अत्यधिक अस्थिर मौसम एवं कठोर परिस्थितियों से प्रभावित होने की संभावना उन क्षेत्रों का अधिक है जो पहले से ही इन घटनाओं से पीड़ित हैं (एफएओ, 2003; आईपीसीसी 2007, डब्ल्यूजी II)।

जलवायु परिवर्तन के संबंध में अंतरसरकारी दल की भविष्यवाणी है कि 2080 तक भारत का औसत तापमान 2.7-4.3 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है (आईपीसीसी 2007, डब्ल्यूजी II)। दल ने यह भी भविष्यवाणी की है कि 2100 तक भारतीय उप-महाद्वीप में वर्षा में 6-8 प्रतिशत की वृद्धि होगी और समुद्र तल में 88 सेंटीमीटर का इजाफा होगा। यह माना जाता है कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय का तापमान पिछले 30 वर्षों में 0.60 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया है। वैश्विक तापमान के बढ़ने के कारण 1990 के उत्तरार्ध से हिमनदों के पीछे हटने की गति बढ़ गई है एवं इसमें वैश्विक औसत की तुलना में और अधिक तेजी आई है। तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस वृद्धि से गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, मूंगफली और आलू की पैदावार में 3-7 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है एवं उच्चतर औसत तापमान में और अधिक हानि हो सकती है। 2020 तक ज्यादातर फसलों की लाभप्रदता सीमांत रूप से घटने की संभावना है लेकिन 2100 तक इसमें 10-40 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। तथापि, CO_2 की मात्रा बढ़कर 550 पीपीएम (भाग प्रति दस लाख) हो जाने से चावल, गेहूँ और तिलहन की पैदावार में 10-20 प्रतिशत की वृद्धि होगी। फसलों की पैदावार के अलावा जलवायु परिवर्तन के चलते गर्मी से होनेवाली कठिनाइयों के कारण पशुओं के प्रजनन में असर पड़ सकता है जिसके परिणामस्वरूप दूध के उत्पादन में नुकसान हो सकता है (अगरवाल एवं अन्य, 2009)।

भारत में, कृषि उत्पादन में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव क्षेत्रवार भिन्न होने की संभावना है। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन का, सिंचित चावल उत्पादन पर तटवर्ती क्षेत्रों में (10 प्रतिशत की कमी) पश्चिमी घाट (4 प्रतिशत की कमी) की अपेक्षा, अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वर्षा-सिंचित चावल के संबंध में पश्चिमी घाट में पैदावार में 10 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है। दूसरी ओर, पूर्वी तटों के बहुत से जिलों में वर्षा-सिंचित चावल में 15 प्रतिशत तक की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है लेकिन पश्चिमी तटों में 20 प्रतिशत तक की कमी आने का अनुमान लगाया गया है। 2030 तक पश्चिमी घाट के अधिकांश क्षेत्रों में नारियल की पैदावार में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। नारियल की पैदावार में, उर्वरण लाभ को छोड़कर (आईएमसीसीए, 2010), वृद्धि का प्रमुख कारण है वर्षा में 10 प्रतिशत की अनुमानित वृद्धि और तापमान में अपेक्षाकृत कम वृद्धि। अनुकरण (सिम्युलेशन) के अनुसार भविष्य में मानसून की वर्षा में अधिक वार्षिक अस्थिरता देखने को मिलेगी। गर्म जलवायु से नमी की मात्रा में वृद्धि तथा समुद्र-भूमि की उष्ण विषमता के कारण भविष्य में भारी वर्षा होगी (टर्नर एंड अन्नामलै, 2012)। इस परिवेश में, मानसून के स्वरूप की बेहतर समझ, एल नीनो घटना एवं ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन का पूरा अनुमान होने से मौसम संबंधी संभावित घटनाओं से बचने के लिए रणनीति एवं आकस्मिक योजनाएं बनाने में बहुत मदद मिलती है।

IV. क्या भारतीय कृषि मानसून प्रूफ्ड (के काबिल/सक्षम) है?

भारत में सिंचाई की क्षमता 22.6 मिलियन हेक्टर (एमएचए) से बढ़कर 2009 में 106 एमएचए हो गई है (राज्य सभा प्रश्न, 2009)। भारत की सर्वाधिक सिंचाई क्षमता 139.5 एमएचए होने का अनुमान लगाया गया है। पूर्ण सिंचाई क्षमता प्राप्त करने पर भी कुल खेती क्षेत्र का लगभग 50 प्रतिशत वर्षा-सिंचित रहेगा (देहाद्य पी.वी., 2008)। यह भारतीय कृषि में मानसून की बढ़ती महत्ता पर प्रकाश डालता है।

आईएमडी के अनुसार, 1951-2000 अवधि में एसडब्ल्यूएम (जून-सितम्बर) की दीर्घावधि औसत (एसपीए) वर्षा (जो सामान्य मौसमी वर्षा भी कहलाती है) लगभग 890.0 एमएम है।[7] इस अवधि में, एसडब्ल्यूएम की औसत वर्षा 887.5 एमएम थी जो

[7] आईएमडी, एलपीए की गणना के लिए 1951-2000 अवधि को आधार अवधि के रूप में प्रयोग करता रहा है। वर्षा संबंधी सिलसिलेवार आंकड़े, जो समुचित 'एन्सेम्बल' नमूना एवं दीर्घावधि पूर्वानुमान (एलआरएफ) नमूने के लिए उपयुक्त है, इस अवधि के लिए उपलब्ध है। साथ ही, 1951-2000 अवधि के बाद के भिन्न-भिन्न आधार अवधि के नमूनों की पूर्वानुमान शक्ति में कोई ठोस अंतर नहीं पाया गया।

चार्ट 4: दक्षिण पश्चिमी मानसून वर्षा में 10 वर्षीय चल औसत घट-बढ़

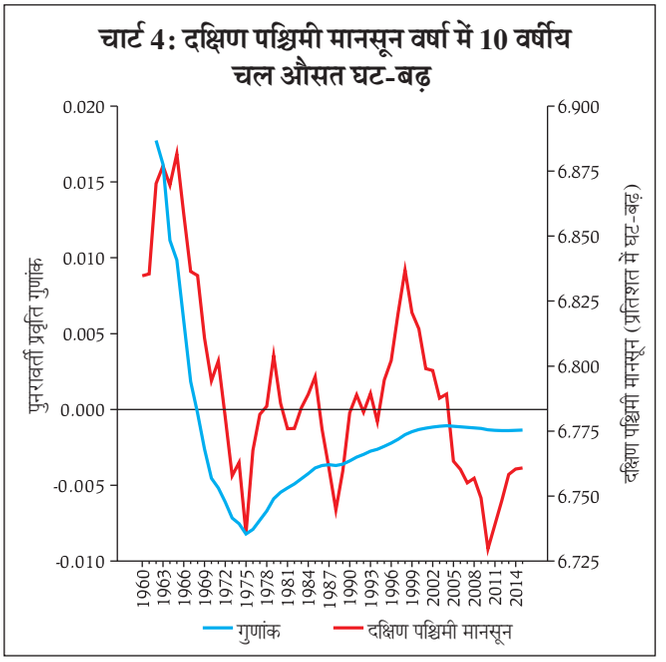

एलपीए से कुछ कम (लगभग 1.2 प्रतिशत) था लेकिन इसका ट्रेंड ग्रोथ 1960 के मध्य से ऋणात्मक होने लगा (चार्ट 4)।[8]

इतिहास के अनुसार, वर्षों से वर्षा में कमी आने के कारण कृषि उत्पादन में गिरावट आई है। आईएमडी द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, 1980 से, पूरे भारत में चार वर्ष अकाल पड़ा है। इन अकाल के वर्षों में गंभीर एल नीनो का भी प्रभाव पड़ा था। इन वर्षों में, अनाज के उत्पादन में 2 से 18 प्रतिशत की कमी आई। फिर भी, अपवाद की स्थिति भी देखने को मिला, जैसे, 2000-01 में एल नीनो का प्रभाव गंभीर नहीं था लेकिन उस समय फसल उत्पादन में भारी कमी आई थी, जबकि वर्षा में मामूली सी कमी आई थी।

इस पृष्ठभूमि में, मानसून अस्थिरता के प्रति भारतीय कृषि के इन्सुलेशन के स्तर का मूल्यांकन करना शैक्षणिक एवं नीतिगत चर्चाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है, विशेष रूप से देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के संगठित प्रयास के संदर्भ में। वर्षा पर कृषि की निर्भरता को कम करने के लिए की गई पहलों में शामिल है - किफायती ऋण का प्रावधान, सिंचाई में पूंजी निवेश, जल एवं भूमि संरक्षण, बेहतर बीज एवं उर्वरक, विस्तार सेवाएं, और विशेष योजनाएं जैसे, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई), पूर्वी भारत में हरित क्रांति लाने की मिशन स्तरीय योजना (बीजीआरईआई), राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम), राष्ट्रीय स्थायी कृषि मिशन (एनएमएसए) एवं तिलहन, दाल, ताड़ का तेल और मकई की एकीकृत योजना (आईएसओपीओएम) (आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार)।[9]

एक सरल विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण, जो यूनिट रूट्स एवं मल्टि-कोलीनिऐरिटी की अनुपस्थिति में काफी दृढ़ है, बताता है कि यद्यपि फसल उत्पादन पर एसडब्ल्यूएम में अस्थिरता का प्रभाव आंकड़ों की दृष्टि से अधिक है, लेकिन यह निवल बोये हुए क्षेत्र के प्रभाव की तुलना में काफी कम है (तकनीकी परिशिष्ट 1)। उदाहरण के रूप में, एसडब्ल्यूएम में 34 फ़ीसदी परिवर्तन से कृषि उत्पादन[10] की वृद्धि में लगभग 8 फ़ीसदी की कमी आ सकती है जबकि निवल बोये हुए क्षेत्र में 6 फ़ीसदी परिवर्तन से कृषि उत्पादन में 7 फ़ीसदी परिवर्तन आ सकता है।

अधिक वास्तविक तस्वीर प्रकट होता है जब सकारात्मक एवं ऋणात्मक मानसून से होने वाले नुकसान के विशिष्ट प्रभाव को

[8] पुनरावर्ती प्रवृत्ति गुणांक का अनुमान लगाने के लिए दो चरणों का उपयोग किया गया है। पहला, सरल बनाने के प्रयोजनार्थ, मात्रा की दृष्टि से (एमएम में) एसडब्ल्यूएम का 10 वर्षीय चल औसत निकाला गया। एसडब्ल्यूएम की वृद्धि दर निकालने के लिए $log\ SWM = \alpha + \beta t$ समीकरण का उपयोग किया गया, जहां $\beta = \frac{\partial log SWM}{\partial t}$ वर्षा की वृद्धि दर है। β निकालने के बाद पुनरावर्ती प्रवृत्ति गुणांक का अनुमान लगाने के लिए पुनरावर्ती न्यूनतम वर्ग रिग्रशन पद्धति का उपयोग किया गया।

[9] अगस्त 2007 में लागू आरकेवीवाई द्वारा कृषि क्षेत्र में राज्यों के निवेश के हिस्से को बढ़ाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता प्रारंभ की गई। एनएफएसएम (2007-08) गेहूं, चावल और दालों के उत्पादन को बढ़ाने का लक्ष्य रखता है। इस योजना में 12वीं पंच वर्षीय योजना के दौरान मोटे अनाज और चारा शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों के संदर्भ में, एनएमएसए द्वारा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने, आजीविका अवसरों को बढ़ाने एवं राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक स्थिरता में योगदान करने हेतु उपयुक्त अनुकूलन और न्यूनीकरण रणनीतियां बनाए जाने की आशा व्यक्त की गई है। पूर्वी भारत में हरित क्रांति लाने की योजना, जो 2010-11 में शुरू की गई थी, चावल आधारित फसल प्रणाली की उत्पादकता को कम करने संबंधी बाधाओं को दूर करने के लिए प्रारंभ की गई थी। इस योजना में सात पूर्वी राज्य यथा, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल शामिल हैं, जिन्होंने वर्धित क्षेत्रफल एवं प्रति हेक्टर पैदावार की बदौलत चावल और गेंहू के बढ़ते उत्पादन के संदर्भ में अनुकूल परिणाम देना शुरू कर दिया है। आईएसओपीओएम देश में तिलहन, दाल, मक्का और ताड़ के तेल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कार्यान्वयन में राज्यों को लचीलापन प्रदान करने के जरिए, फसल विविधता को बढ़ावा देने हेतु क्षेत्रवार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण पर आधारित चार केंद्र प्रायोजित कार्यक्रमों, नामतः तिलहन उत्पादन कार्यक्रम (ओपीपी), राष्ट्रीय दाल विकास प्रॉजेक्ट (एएमडीपी), त्वरित मक्का विकास कार्यक्रम (एएमडीपी) और ताड़ तेल विकास कार्यक्रम (ओपीडीपी) के विलयन का परिणाम है।

[10] 2004-05 के स्थिर मूल्यों के आधार पर कृषि उत्पादन का मूल्य लगाना।

अलग कर दिया जाए (चार्ट 5)। इससे पता चलता है कि समय के साथ-साथ सकारात्मक मानसून से होने वाले नुकसान के प्रति कृषि उत्पादन की संवेदनशीलता धर्म-निरपेक्ष रूप से घट रही है।[11]

इसका कारण है भू उपयोग की परिपूर्णता (विशेष रूप से, भूमि की सीमांत उत्पादकता में कमी आना), उपज एवं कुल बुवाई क्षेत्रफल में वृद्धि न कर पाना एवं शहरीकरण के लिए भू उपयोग में विविधता लाना, जो बुवाई क्षेत्र में कटौती करता है।[12] इससे प्रतीत होता है कि भारतीय कृषि मानसून के नुकसान को सहने के लिए अब तक पूरी तरह से तैयार नहीं हो पाई है, खास तौर पर ऋणात्मक मानसून से होने वाले नुकसान के स्थिर प्रभाव की दृष्टि से (चार्ट 5)।

भारतीय कृषि के इन्सुलेशन के संबंध में अनुभवजन्य प्रमाण दुविधाजनक स्थिति में है। उदाहरण के लिए, यद्यपि एसडब्ल्यूएम में 2009-10 के दौरान लगभग 22 प्रतिशत की कमी पाई गई, फसल क्षेत्र के मूल्य संवर्धन में केवल 0.2 प्रतिशत की कमी आई। इसके विपरीत 1999-2000 में , एसडब्ल्यूएम में 8.5 प्रतिशत की कमी के बावजूद फसलों में 2.1 प्रतिशत का मूल्य संवर्धन हुआ। स्पष्ट है कि भारतीय कृषि का फसल वाला घटक एसडब्ल्यूएम वर्षा के बदलते स्वरूप के प्रति अधिक संवेदनशील है (तकनीकी परिशिष्ट II)। तदनुसार, संबद्ध कार्यकलापों के पक्ष में कृषि की विविधता के लिए किए जा रहे प्रयास, वैकल्पिक रणनीतियों की अपेक्षा, मानसून संबंधी अस्थिरता के प्रति अधिक लचीलापन प्रदान कर सकते हैं (चार्ट 6)। इस संबंध में, उत्पादन की अनिश्चितता एवं बदलते स्वरूप को देखते हुए यह पाया गया है कि कृषि, वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में आजीविकाओं का भरण-पोषण पूरी तरह से नहीं करती। आम समुच्चय संसाधनों से जितना अधिक सहयोग मिलेगा, हाउसहोल्ड की अतिसंवेदनशीलता एवं मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों पर हाउसहोल्ड की निर्भरता उतनी ही कम होगी (नाबार्ड ओपी-60, 2014)।

चार्ट 5: दक्षिण पश्चिमी मानसून वर्षा में वृद्धि/कमी संबंधी संवेदनशीलता गुणांक

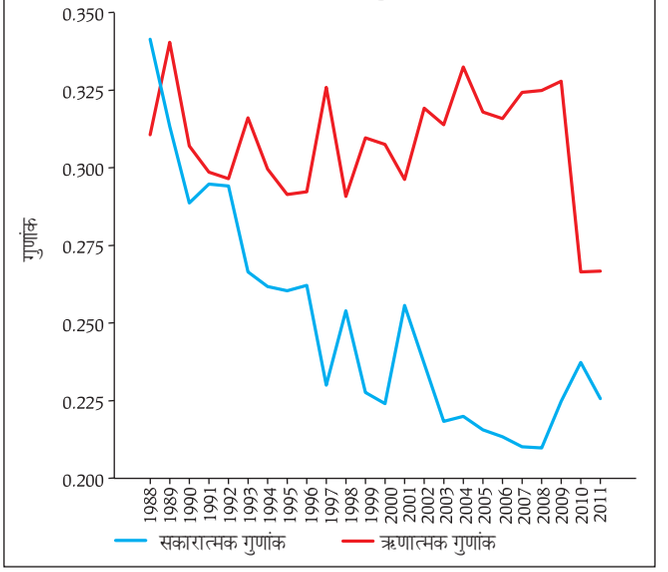

इस संदर्भ में कायापलट कर देने वाली बात है - संभावित घटनाओं जैसे, सूखा, अकाल एवं बुवाई और तैयार फसलों पर बुरा असर डालने वाली अन्य कठोर जलवायु परिस्थितियों से निपटने की सरकार की तैयारी। पूर्व में 2009-10 के अनुभव का जो हवाला दिया गया था वह उसका स्पष्ट उदाहरण है। सामान्य से कम मानसून की संभावनाओं के समय एक बेहतर आकस्मिक योजना एवं सूखे से निजात पाने की प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रावधान शामिल हैं - गुणवत्ता एवं अल्पावधि वाले बीजों की उपलब्धता, कृषिजन्य निविष्टियां, रबी अभियान और अगले फसल मौसम के लिए कार्य योजनाएं, मीडिया टेलीकास्टिंग तथा जगरुकता अभियान, केंद्र प्रायोजित कार्यक्रमों के अंतर्गत धन की वर्धित उपलब्धता एवं तैयार फसलों के बचाव हेतु सुरक्षात्मक सिंचाई के लिए अतिरिक्त डीजल

[11] 2009-10 में एसडब्ल्यूएम में 22 प्रतिशत के बड़े घाटे के बावजूद, जो 37 वर्षों में सर्वाधिक घाटा माना जाता है, कृषि क्षेत्र का प्रदर्शन, दोनों, अच्छी रबी फसलों एवं सरकार द्वारा उसके प्रभाव को कम करने के लिए निविष्टियों के बेहतर प्रावधान, राज्यों को अल्पावधि फसलें अपनाए जाने का निदेश देने, बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करने, मंडलीय स्तर पर सम्मेलनों और रबी मौसम के लिए कार्य योजना बनाने के उद्देश्य से रबी अभियान कार्यक्रम करने, किसानों के हित के लिए मीडिया टेलीकास्टिंग, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत बीजों पर लगाए गए प्रतिबंधों को हटाने एवं बीजों के मिनी-किटों के वितरण, केंद्र प्रायोजित कार्यक्रमों के अंतर्गत धन उपलब्ध कराने तथा डीज़ल सब्सिडी के जरिए तैयार फसलों को बचाने के लिए पूरक सुरक्षात्मक सिंचाई के माध्यम से किए गए कई सक्रिय उपायों की बदौलत स्थिर रहा। इसके परिणामस्वरूप 2009-10 में नकारात्मक प्रभाव में भारी गिरावट आई।

[12] पिछले कुछ वर्षों में, भू उपयोग के स्वरूप में बहुत परिवर्तन आया है। निवल बुवाई क्षेत्र 1983-84 में बढ़कर 143.21 मिलियन हेक्टर (अब तक सर्वाधिक) हो गया जबकि 1950-51 में यह 118.8 मिलियन हेक्टर था। फिर भी, 1990 के दौरान, निवल बुवाई क्षेत्र 0.09 प्रतिशत की औसत दर से घटा जो मात्रा की दृष्टि से 142.4 मिलियन हेक्टर था। 2000 के दौरान, निवल बुवाई क्षेत्र (-) 0.09 प्रतिशत की औसत दर से घटा और लगभग 140.0 मिलियन हेक्टर रहा जो कृषि क्षेत्र में कटौती दर्शाती है। इस तथ्य का आधार यह है कि कृषितर उपयोग के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र (बंजर एवं खेती के लिए अयोग्य भूमि) 1950-51 के 9.4 मिलियन हेक्टर से बढ़कर 2009-10 में 26.2 मिलियन हेक्टर हो गया है। 2000 के दौरान, कृषितर उपयोग के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र 1.04 प्रतिशत की औसत दर से बढ़कर लगभग 24.9 मिलियन हेक्टर रहा। इस मामले की संभावना है कि कृषितर उपयोग के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में वृद्धि का कारण है शहरीकरण/भू संपदा क्षेत्र, बड़े उद्योगों एवं विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) की स्थापना, जिसकी मांग हाल के वर्षों में काफी बढ़ी है, जैसे प्रतिस्पर्धात्मक प्रयोगों के लिए कृषि भूमि का उपयोग/बिक्री।

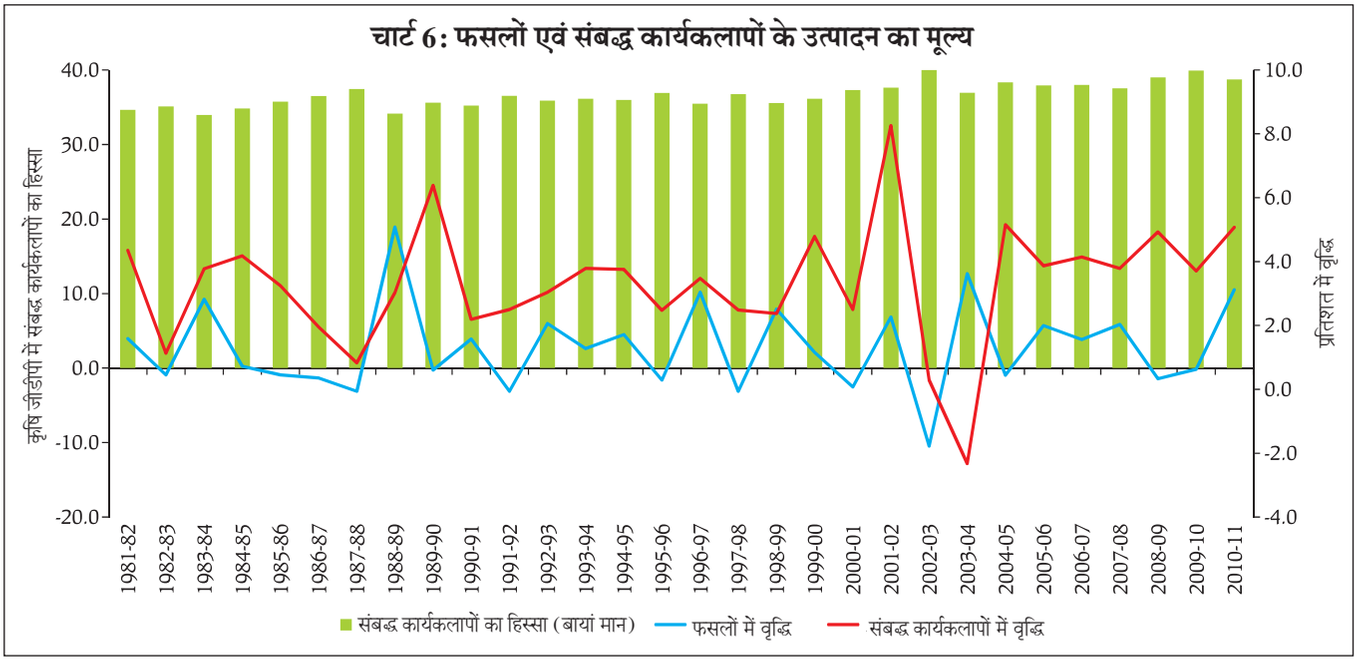

सब्सिडी। इन आकस्मिक उपायों की अनुपस्थिति में कमजोर मानसून का फसलों के उत्पादन पर और अधिक प्रभाव पड़ सकता है।

कुल निवल बुवाई क्षेत्रों में 68 प्रतिशत क्षेत्र, जिसमें से 50 प्रतिशत को 'भयंकर' के रूप में वर्गीकृत किया गया है, को सूखाग्रस्त वर्गीकृत करने के साथ ही 2005 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) की स्थापना की गई और गृह मंत्रालय, भारत सरकार को उसका नोडल एजेंसी बनाया गया। एनडीएमए राष्ट्रीय आपदा से निपटने के लिए रोकथाम और शमन के साथ-साथ तैयारी और प्रतिक्रिया योजना बनाता है। जहां तक सूखा और कृषि संबंधी योजनाओं का संबंध है, सेन्ट्रल रीसर्च इंस्टीच्यूट फार ड्राईलैंड एग्रीकल्चर (सीआरआईडीए), स्टेट एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटीज़, एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के साथ मिलकर जिला-वार आकस्मिक योजनाएं बनाई गई हैं। इन योजनाओं और नीतियों के जरिए जल प्रबंधन को बढ़ावा देकर तथा भोजन और चारा के एक्सेस को सुनिश्चित कर सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है। योजनाएं जैसे जलवायु परिवर्तन के संबंध में राष्ट्रीय मिशन जो वन क्षेत्र में वृद्धि करता है तथा मल्टिपल ईकोसिस्टम को बहाल करता है, जारी इंटीग्रेटेड वाटरशेड डिवलेपमेंट प्रोग्राम (आईडब्ल्यूडीपी), राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, एवं कृषि क्षेत्र में राज्य निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आरकेवीवाई जैसी योजनाएं कृषि को सूखे के खिलाफ सक्षम बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इन एकीकृत योजनाओं को, बादल का बनना, हवा की दिशा एवं बिजली जो सदियों से अस्तित्व में है के संबंध में स्वदेशी तकनीकी ज्ञान (आईटीके) के विशाल भंडार तथा पूर्व चेतावनी हेतु वर्धित क्षमता और प्रभाव मॉनिटरिंग प्रक्रियाओं के साथ जोड़ने से कृषि पर सूखे एवं जलवायु परिवर्तन का प्रभाव काफी हद तक कम किया जा सकता है (राठौड़ बी.एम.एस. *और अन्य,* 2014)।

V. निष्कर्ष

अंततः, भारतीय कृषि वर्षा संबंधी बड़े उतार-चढ़ावों का सामना कर पाने में पूरी तरह से सक्षम नहीं हो पाई है। फिर भी, 2009-10 का अनुभव दर्शाता है कि प्रतिकूल मानसून से होने वाले नुकसान को सक्रिय नीतिगत उपायों के जरिए बेहतर किया जा सकता है।

अत्यधिक चिंता का विषय है - अनुकूल मानसून से होने वाले नुकसान के प्रति फसल उत्पादन के मूल्य की घटती संवेदनशीलता, जो उत्पादकता में भू-उपोयग की परिपूर्णता और इग्ज़ॉस्चन ऑफ इकोनामिक्स ऑफ स्केल एंड स्टैगनेशन की ओर संकेत करती है। स्थायी कृषि एवं खाद्य सुरक्षा के लिए व्यापक मध्यक्षेप के साथ-साथ दाल एवं तिलहन के संबंध में एक और हरित क्रांति की आवश्यकता है जैसा कि पूर्वी भारत में जारी है। यह एक उचित नीतिगत विकल्प हो सकता है कि प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र ऋण का एक हिस्सा किसानों/अन्यों के लिए चिह्नित किया जाए, विशेष रूप से न जोते जाने योग्य/बंजर भूमि के उद्धार/ विकास हेतु जिससे कुल बुवाई क्षेत्र में वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार का भूमि सुधार का उदाहरण सौराष्ट्र और पड़ोसी कच्छ में देखा जा सकता है - जहां आधा रेगिस्तान और आधार क्षारयुक्त क्षेत्र अब हरे भरे हरित

क्रांति का चमकता हुआ नमूना बन गया है। कृषि क्षेत्र के विकास में और भी कई प्रकार की पहल से गुजरात कृषि क्षेत्र में देश का सबसे तेजी से विकसित होने वाली अर्थव्यवस्था बन गया है। मध्य प्रदेश द्वारा हाल में एक अन्य पहल यह की गई है कि उन्होंने पहाड़ी क्षेत्र की भूमि को पुनः सुधार करके तथा चंबल घाटी के प्लैटू को भी सुधारने की हाल में पहल की ताकि खेती करने के लिए भूमि का क्षेत्र बढ़ाया जा सके।

जैसाकि विविध अध्ययनों से पता चलता है कि चीजों की आपूर्ति के बारे में मौसमी परिवर्तन से काफी बाधा पैदा होती है और उससे कृषि संबंधी उत्पाद की उपलब्धता प्रभावित होती है। इस प्रकार से, सूक्ष्म सिंचाई परियोजनाओं में भारी निवेश, वर्षा के जल का संग्रहण, ज़मीन के पानी का कुशल प्रबंधन, भूमि का विकास/भूमि-उद्धार और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी के उत्तरोत्तर उपयोग से मौसमी परिवर्तन से होने वाले जोखिमों जो मानसून के आघात के रूप में होता है, से बचा जा सकता है। चूंकि संबद्ध गतिविधियां मानसून में होने वाले परिवर्तनों से कम प्रभावित होती हैं, इसलिए कृषि संबंधी गतिविधियों के लगातार विविधीकरण से संबद्ध गतिविधियां बढ़ती हैं और इससे वैकल्पिक रणनीतियां अपनाने के बजाय विविधीकरण से गतिविधियों में अधिक समुत्थानशक्ति पैदा होती है।

संदर्भ

पी.के. अगरवाल एवं अन्य 2009, "मौसमी परिवर्तन का भारतीय कृषि पर प्रभावः इसकी वर्तमान स्थिति का परिचय" http://www.moef.nic.in/sites/default/files/Vulnerability_PK%20Aggarwal.pdf पर उपलब्ध ।

कृषि सांख्यिकी-एक नज़र में, विविध मुद्दे, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, http://agricoop.nic.in/Agristatisticsnew.html पर उपलब्ध।

रमेशचंद और एस.एस. राजू(2009), "मानसून न होने के प्रभावों की रोकथाम" इकोनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली अंक XLIV सं. 41 10 अक्तूबर, 2009।

पी.वी. देहडराय 2008, "भारत में सिंचाई" एफएओ कारपोरेट दस्तावेज रिपाजिटरी, http://www.fao.org/docrep/007/y5082e/y5082e08.htm पर उपलब्ध ।

दिलिबर्तो, टॉम, ''ईएनएसओ एंड दी इंडियन मानसून... नॉट एस स्ट्रैटफार्वर्ड एस यू थिंक'', http://www.climate.gov, 2 जुलाई 2014 पर उपलब्ध है।

अर्थ साइंस ऑस्ट्रेलिया, http://earthsci.org/flooding/index.html पर उपलब्ध है।

इकोनॉमिक सर्वे, वेरियस इशूस, भारत सरकार, http://indiabudget.nic.in/survey.asp

ईपीए, अप्रैल 2010, ''क्लाइमेट चेंज साइंस फैक्ट्स'' यूएस एनविराँमेंट प्रोटेकशन एजेंसी (ईपीए), http://www.epa.gov/climatechange/downloads/Climate_Change_Science_Facts.pdf पर उपलब्ध है।

एफएवो 2003, ''वर्ल्ड एग्रीकल्चर: टुवर्डस् 2015/2030- एन एफएओ पर्सपेक्टिव http://www.fao.org/fileadmin/user_upload/esag/docs/y4252e.pdf पर उपलब्ध है।

गुहथकुर्ता पी., मेनन पी., मजूमदार ए.बी., स्रीजित ओ.पी., ''चेंजस इन एक्सट्रीम रेनफाल ईवेंट्स एंड फ्लड रिस्क इन इंडिया ड्यूरिंग लास्ट सेंचुरी'', (एनसीसी अनुसंधान रिपोर्ट, आरआर सं. 3/2010)

आईसीआईएमओडी (इंटरनेशनल सेंटर ऑर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलेपमेंट), ''हिंदु कुश हिमालयन ग्लेसिर्यस - अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न'' http://www.icimod.org/?q=1179 पर उपलब्ध है।

आईएनसीसीए 2010, ''क्लाइमेट चेंज एंड इंडिया: ए 4x4 एसेसमेंट्स'' इंडिया नेटवर्क फॉर क्लाइमेट चेंज एसेसमेंट (आईएनसीसीए) http://www.moef.nic.in/downloads/public-information/fin-rpt-incca.pdf पर उपलब्ध है।

आईपीसीसी, 2007, ''इमपैक्ट्स, अडापटेशन एंड वलनरबिलिटी'' वर्किंग ग्रुप II. http://www.ipcc.ch/pdf/assessment-report/ar4/wg2/ar4_wg2_full_report.pdf पर उपलब्ध है।

जोशी यू.आर., एवं राजीवन एम., ''ट्रेंड्स इन पर्सीपिटेशन एक्सट्रीम्स ओवर इंडिया'', नेशनल क्लाइमेट सेंटर रिसर्च रिपोर्ट नं. 3/2006.

के. कृष्ण कुमार, ''इम्पेक्ट आफ क्लाइमेट चेंज ऑन इंडियास् मानसूनल क्लाइमेट एंड डेवलेपमेंट आफ हाई रेजल्युशन क्लाइमेट चेंज सिनेरियोज़ फॉर इंडिया'' इंडियन इंस्टीट्यूट आफ ट्रॉपिकल मीटीयोरोलॉजी, पुणे अक्तूबर 2009.

कुमार, के.कृष्ण, बी.राजगोपालन, एम.केन, 1999: ऑन दी वीकनिंग रिलेशनशिप बिटवीन दी इंडियन मानसून एंड ईएमएसओ। साइंस, 284, 2156-2159.

कुमार, के. कृष्ण, बी.राजगोपालन, एम, होयरलिंग, जी.बेट्स, एम.केन. 2006: अनरेवलिंग दी मिस्ट्री आफ इंडियन मानसून फेलियर ड्यूरिंग एल नीनो। साइंस, 314, 115-119.

नाबार्ड ओपी (ओकेशनल पेपर सं. 60), ''ए कॉमन्स स्टोरी इन दी रेन शेडो आफ ग्रीन रेवल्युशन'', मुंबई, 2014.

नासा, किड्स अर्थ, ''एल नीनो-एंड वाट ईस दी सदर्न ऑसिलेशन एनीवे?'', http://kids.earth.nasa.gov/archive/nino/intro.html पर उपलब्ध है।

राजीवन एम., गड़गिल एस., भाते जे., ''एक्टिव एंड ब्रेक स्पेल्स आफ दी इंडियन मानसून'', एनसीसी रिसर्च रिपोर्ट, 7/2008.

राज्य सभा प्रश्न (2009), अतारांकित प्रश्न सं. 3219 (वाटर रिसोर्सस - बजटरी अलोकेशन फॉर इरिगेशन) दिनांक 17.12.2009.

राठोड़ बी.एम.एस. और अन्य, ''ड्राउट कंडीशन्स एंड मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस इन इंडिया'' ''कैपेसिटी डेवलेपमेंट टू सपोर्ट नेशनल ड्राउट मैनेजमेंट पॉलिसीस'' के संबंध में यूएन-जल पहल के अंश के रूप में एशिया-पेसीफिक के लिए क्षेत्रीय कार्यशाला हेतु तैयार की गई देश रिपोर्ट, हनोय, वियतनाम, मई 6-9, 2014.

भारतीय रिज़र्व बैंक, वार्षिक रिपोर्ट 2013-14, ''लो रेइनफाल एंड इट्स कांसिक्वेन्सेस'' (बॉक्स I.1, अध्याय I) http://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/AnnualReport/PDFs/01P1AR150814.pdf पर उपलब्ध है।

समरा जे एस एंड सिंह जी. 2004, हीट वेव आफ मार्च 2004: इम्पेक्ट ऑन एग्रीकल्चर. इंडियन काउंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च. 32पीपी.

सिंथसिस एंड एसेसमेंट प्रॉडेक्ट 4.3 (सैप 4.3): दी इफेक्ट्स आफ क्लाइमेट चेंज ऑन एग्रीकल्चर, लैंड रिसोर्सस, वाटर रिसोर्सस एंड बायोडाइवर्सिटी इन दी यूनाइटेड स्टेट्स, 2008.

टर्नर एंड अन्नामलै (2012); क्लाइमेट चेंज एंड दी साउथ एशियन मानसून, *नेचर क्लाइमेट चेंज* 2: 587-595, डीओआई 10.1038/nclimate1495.

तकनीकी परिशिष्ट I

मानसून संबंधी अस्थिरताओं के प्रति फसल उत्पादन की संवेदनशीलता

1981-82 से 2010-11 की अवधि के डेटा के लिए, स्थिर कीमतों पर फसलों का समग्र उत्पादन मूल्य, दक्षिण पश्चिमी मानसून वर्षा, निवल सिंचित क्षेत्र, निवल बुवाई क्षेत्र, उर्वरक खपत, वास्तविक कृषि ऋण एवं कृषि में सकल स्थिर पूंजी निर्माण की बदौलत पूर्वावस्था में पहुंच गया। उर्वरक खपत, कृषि में सकल स्थिर पूंजी निर्माण, वास्तविक कृषि ऋण और निवल बुवाई क्षेत्र सांख्यिकीय तौर पर पर्याप्त नहीं थे एवं इसलिए समीकरण में शामिल नहीं किया गया। समरैखिकता न होना सुनिश्चित करने के लिए, बहु-समरैखिकता वाले परिवर्तनशील स्फीतिकारी कारक (वीआईएफ) परीक्षण किए गए। शेष प्रेडिक्टर्स, जैसे, निवल बुवाई क्षेत्र, के वीआईएफ परीक्षण एवं दक्षिण पश्चिमी मानसून वर्षा का परकलित मूल्य 10 से कम पाया गया, जो बहु-समरैखिकता दर्शाता है। अंतिम वेरिअबल को उसके नैचुरल लॉगरिदम के पहले अंतर में परिवर्तित किया गया ताकि उसे वार्षिक वृद्धि दरों में बदला जा सके और साथ ही उन्हें स्टेशनरी उपलब्ध कराया जा सके। फस्ट ऑर्डर आटोरिग्रेशन का प्रायोगिक परिणाम इस प्रकार है:

$$\Delta\text{CROPROD} = 0.03 + 0.25\ \Delta\text{SW-MONSOON} + 1.19\ \Delta\text{AREA}$$
$$(7.43) \qquad (4.96^*) \qquad (3.75^*)$$
$$\text{R-BARSQ} = 0.80;\ \text{DW}=2.38;\ \text{SEE}=0.03$$

*संकेत करता है कि गुणांक 1% के क्रिटकल स्तर पर पर्याप्त है।

जहां,

CROPROD	*स्थिर मूल्यों (आधार 2004-05) पर फसल उत्पादन का मूल्य*
SW-MONSOON	*दक्षिणपश्चिमी मानसून वर्षा मिलीमीटर में*
AREA	*मिलियन हेक्टेर में निवल बुवाई क्षेत्र*
Δ	*नैचुरल लॉगरिदम का पहला अंतर*

चूंकि डरबिन-व्हाटसन (DW) सांख्यिकी का मूल्य 2 से अधिक अर्थात् $dw > 2$ था, इसलिए ऋणात्मक ऑटोकोरिलेशन की अस्तित्वहीनता का परीक्षण किया गया जिसमें परीक्षण सांख्यिकी $(4 - dw) > dw_{(u,\alpha)}$ का महत्त्व शामिल है। $4 - dw = 1.62$ का मूल्य 1 प्रतिशत महत्त्व स्तर पर उच्च क्रिटिकल मूल्य $dw_{(u,\alpha)} = 1.34$ से अधिक था, जो इंगित करता है कि एरर टर्म्स नेगेटिवली ऑटोकोरिलेटड नहीं है।

तकनीकी परिशिष्ट II

फसल उत्पादन, संबद्ध कार्यकलापों और मानसून

न्यून दक्षिण पश्चिमी मानसून वर्षों के लिए डमी पर फसल उत्पादन के मूल्य एवं संबद्ध कार्यकलापों के उत्पादन के मूल्य (दोनों स्थिर कीमतों पर) का ओएलएस रिग्रेशन पुष्टि करता है कि इस अवधि के दौरान संबद्ध कार्यकलापों पर न्यून मानसून का प्रभाव आंकड़ों की दृष्टि से अपर्याप्त है लेकिन वह फसलों के लिए पर्याप्त है।

$$AGRI = 7.93 - 8.31\ DUMSW$$
$$(5.61) \quad (-4.49)^*$$
$$R^2 = 0.37 \qquad DW = 2.55 \qquad *: 1\% \text{ पर पर्याप्त}$$

$$ALLIED = 2.73 + 0.43\ DUMSW$$
$$(4.63) \quad (0.56)^{**}$$
$$R^2 = 0.009 \qquad DW = 1.96 \qquad **: \text{पर्याप्त}$$

जिसमें,	*AGRI*	*स्थिर कीमतों (आधार 2004-05) पर फसल उत्पादन का मूल्य*
	ALLIED	*स्थिर कीमतों (आधार 2004-05) पर मवेशी, मत्स्य एवं वानिकी तथा लॉगिंग से उत्पादन का मूल्य*
	DUMSW	*न्यून एसडब्ल्यूएम वर्षा का डमी एलपीए के (-) 10 प्रतिशत से अधिक*

एसडब्ल्यूएम डमी और कृषि उत्पादन एवं संबद्ध क्षेत्र के उच्च अनुमानित संबंध को देखते हुए, निगटिव ऑटोकोरिलेशन का डीडब्ल्यू सांख्यिकी परिक्षण बताता है कि $4 - dw = 1.45$ का मूल्य 1 % स्तर की पर्याप्तता पर 1.30 के अपर क्रिटिकल मूल्य $dw_{(u,\alpha)}$ से अधिक है। अतएव एरर टर्म्स निगटिवली ऑटोकोरिलेटड नहीं हैं।